



प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण विधेयक सबसे पहले आजीविका

अनिवार्य भूमि अधिग्रहण से उत्पन्न होने वाले कठोर सामाजिक प्रश्नों पर एक समन्वित नीतिगत प्रतिक्रिया लंबे समय से लंबित है। एक के बाद एक आयी सरकारें भूमि अधिग्रहण से प्रभावित होने वाले लोगों की आजीविका को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक प्रभावी कानून बनाने में नाकामयाब रही हैं जिससे इस सवाल पर होने वाले टकराव लगातार बढ़ते गए हैं। लिहाजा, भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास व पुनर्स्थापन हेतु निष्पक्ष क्षतिपूर्ति एवं पारदर्शिता विधेयक, 2011 इस दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। परंतु दूसरी तरफ इस विधेयक में बहुत सारी खामियां भी हैं जिन पर तुरंत ध्यान दिया जाना चाहिए। अगर समय रहते ये काम नहीं किया गया तो यह कानून भारत में जमीन की संवेदनशील स्थिति का समाधान करने में नाकाम साबित होगा और एक नए कानून के बावजूद पुराने तौर-तरीकों के बने रहने से जो टकराव पैदा होंगे उन्हें रोकना संभव नहीं हो पाएगा।

सारांश

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास व पुनर्स्थापन हेतु निष्पक्ष क्षतिपूर्ति एवं पारदर्शिता विधेयक, 2011, दो ऐसे विषयों को एक दूसरे के समन्वय में लाने की कोशिश कर रहा है जो अभी तक एक दूसरे के खिलाफ दिखाई देते रहे हैं। एक तरफ तो यह विधेयक सरकार के विकास एजेंडा के अनुरूप जमीन की जरूरतों को पूरा करने का प्रयास करता है और दूसरी तरफ इसमें उन लोगों के बढ़ते प्रतिरोध का समाधान करने का प्रयास भी किया गया है जिनकी जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। ये विधेयक सही दिशा में उठाया गया एक अहम कदम है क्योंकि यह भूमि अधिग्रहण को पुनर्वास व पुनर्स्थापन (आर एण्ड आर) के साथ जोड़ कर देखता है। इस तरह, ये कानून निम्नलिखित ऐसे सवालों को सामने ले आता है जो भूमि अधिग्रहण के मसले पर लंबे समय से टकराव का विषय रहे हैं :

- ▶ सरकार किन परिस्थितियों में अपने 'एमिनेंट डोमेन' यानी सर्वोत्कृष्ट प्राधिकार की अपनी शक्ति का वैध रूप से प्रयोग कर सकती है, यानी किन मौकों पर सरकार लोगों को मुआवजा देकर जबरन उनकी जमीन का अधिग्रहण कर सकती है?² अर्थात सार्वजनिक उद्देश्य की अवधारणा को कितना संकुचित किया जा सकता है?
- ▶ ऐसे प्रयासों से विस्थापितों पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं उनकी रोकथाम के लिए मुआवजे और पुनर्वास व पुनर्स्थापन की प्रक्रिया किस तरह तय की जानी चाहिए?

जानकारों का मानना है कि बहुत सारे दूसरे देशों के मुकाबले भारत में इन सवालों का जवाब देना ज्यादा मुश्किल है। यहां जमीन भी कम है और उसका वितरण भी असमान है। छोटी-छोटी जमीनों का बंटवारा बड़े भूखंडों के बंटवारे से ज्यादा रहा है जिससे लगातार अधिक से अधिक परिवार भूमिहीन होते जा रहे हैं। जिन किसानों के पास आजीविका के दूसरे विकल्पों को अपनाने के लिए पर्याप्त कौशल नहीं है, उनके पास जमीन न होने पर आय के कोई वैकल्पिक अवसर नहीं होते। ये व्यवस्थागत मुश्किलें एक विफल और अपारदर्शी भूमि बाजार को जन्म देती हैं जहां जमीन का वास्तविक क्रय-विक्रय कम होता है और जो होता भी है वह अकसर सरकार की जानकारी में नहीं होता।

बेशक, प्रस्तुत विधेयक सही दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है लेकिन यह कई अहम अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता है। यह

विधेयक सार्वजनिक उद्देश्य की एक बेहद व्यापक परिभाषा पेश करता है जिसके चलते इसके दुरुपयोग की संभावनाएं खुल जाएंगी। दूसरी तरफ, इसके प्रगतिशील सुरक्षा प्रावधानों को भी और मजबूत किया जाना चाहिए। ऑक्सफैम इंडिया नीति निर्माताओं से आग्रह करता है कि वे निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान दें और प्रस्तावित विधेयक की इन खामियों को दूर करें।

सिफारिशें

- ▶ अनिवार्य भूमि अधिग्रहण का प्रावधान केवल कुछ बेहद सुपरिभाषित सरकारी उद्देश्यों तक ही सीमित रहना चाहिए। निजी परियोजनाओं को सुविधा देने के मामले में सरकार की भूमिका जमीन के क्रय-विक्रय पर नियमन से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।
- ▶ विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को बाध्यकारी मान्यता देकर सरकार को सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों को और मजबूत करना चाहिए।
- ▶ प्रभावित लोगों की आजीविका बहाल करने के लिए पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन के प्रावधानों में संशोधन किया जाना चाहिए।
- ▶ विभिन्न प्रकार के भूमि अधिग्रहणों को ध्यान में रखते हुए बनाए गए विशेष कानूनों और प्रस्तावित विधेयक के बीच तालमेल होना चाहिए।

इन आयामों के अलावा यह मसौदा विधेयक और भी कई सवाल खड़े करता है। इस मुद्दे की पेचीदगी को देखते हुए, अत्यावश्यक सार्वजनिक बहस कम महत्वपूर्ण मुद्दों पर भी सीमित हो सकती है जिससे कुछ बेहद महत्वपूर्ण और ज्यादा समस्याप्रद आयामों पर ध्यान नहीं जा पाएगा। ऐसे दो आयाम निम्नलिखित हैं :

- ▶ मुआवजा नियम तय करने में क्रमशः केंद्र और राज्य सरकारों की भूमिका क्या होनी चाहिए?
- ▶ सरकार की जवाबदेही तय करने में नागर समाज किस तरह प्रभावी हो सकता है?

संदर्भ

सरकार के पास इस आशय के अधिकृत आंकड़े नहीं हैं कि कितनी जमीन का अधिग्रहण किया गया और इसके चलते कितने लोग विस्थापित हुए हैं। फिर भी, सबसे विश्वसनीय अनुमानों के आधार पर ऐसा माना जा सकता है कि 1947 से 2004 के बीच लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हुए हैं।⁹ ज्यादातर अधिग्रहण सरकार द्वारा अपने इस्तेमाल के लिए किए गए हैं परंतु आर्थिक उदासीकरण की नीति के अस्तित्व में आने से यह तस्वीर लगातार बदलती जा रही है।

अब बहुत सारे सार्वजनिक उद्यमों का आंशिक या पूर्ण निजीकरण हो चुका है तथा 12वीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक-निजी सहभागिता (पीपीपी) के समर्थन में जिस तरह जोर दिया गया है उससे सार्वजनिक और निजी हितों का भेद और भी कमजोर हो जाएगा। समुचित मुआवजा व पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन उपायों के बिना किए गए अधिग्रहणों का लगातार विरोध होता रहा है। गुजरात में 30 साल से चल रहा नर्मदा बचाओ आंदोलन, पश्चिम बंगाल में नंदीग्राम और सिंगुर, या उत्तर प्रदेश स्थित ग्रेटर नोएडा के संघर्षों ने प्रभावितों के हालात और दावों पर सभी का ध्यान आकृष्ट किया है। सिंगुर की घटना इस प्रवृत्ति का एक उदाहरण है जहां वाम मोर्चा सरकार ने टाटा कंपनी के एक कार उत्पादक कारखाने के लिए 1000 एकड़ जमीन के अधिग्रहण का प्रयास किया था। इस फैसले के बाद जो संघर्ष शुरू हुआ वह अदालतों के माध्यम से भी हल नहीं हो पाया और लगातार राजनीतिक रंग अख्तियार करता गया। तृणमूल कांग्रेस द्वारा सत्ता में आने पर सिंगुर में भूमि अधिग्रहण के फैसले को उलटने का आश्वासन एक मुख्य वजह थी जिसके चलते पार्टी को राज्य विधानसभा के चुनावों में जीत हासिल हुई थी।⁴

भूमि अधिग्रहण के सवाल पर बढ़ता टकराव एक ऐसे संदर्भ में सामने आ रहा है जहां जमीन पर पड़ रहे जनसांख्यिकीय एवं आर्थिक दबाव बेहिसाब बढ़ चुके हैं। ग्रामीण भारत में निजी जोतों का आकार दुनिया भर में सबसे छोटे आकारों में से एक है। केरल में 0.57 एकड़ और पंजाब जैसे राज्यों में यह आकार 10 एकड़ प्रति व्यक्ति से भी कम है जबकि पंजाब में यह क्षेत्रफल भारतीय मानकों के हिसाब से बड़ी जोत माना जाता है। चीन (0.5 एकड़) और बांग्लादेश (0.6 एकड़) जैसे देशों में भी भू-स्वामित्व कम है लेकिन अगर यूरोप, दक्षिण अमेरिका और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे क्षेत्रों से तुलना की जाए तो भारत का औसत भू-स्वामित्व बहुत ही नीचे दिखाई देता है। गौरतलब है कि यूरोप, दक्षिण अमेरिका और संयुक्त राज्य अमेरिका में भू-स्वामित्व क्रमशः 32.3 एकड़, 111.7 एकड़ और 178.4 एकड़ प्रति व्यक्ति है।⁵ भारत में भूमि वितरण में असमानता भी बहुत ज्यादा है और लगातार बढ़ती जा रही है। बहुत संकुचित अनुमानों से भी भू-स्वामित्व आकारों का गिनी कोएफिशिएंट 0.7 है जबकि उपभोग और आय के लिए गिनी कोएफिशिएंट 0.32 और 0.53 है जो एक ज्यादा समतापरक वितरण को दर्शाते हैं।⁷ जनसांख्यिकीय वृद्धि और कम शहरीकरण दर से भी भू-स्वामित्व का आकार छोटा हुआ है। विशेषज्ञों का मानना है कि 1992 से 2003 के बीच लगभग अथवा पूर्ण भू-स्वामित्व में कम से कम 6 फीसदी का इजाफा हो चुका है।⁸ स्थिति इस वजह से और भी जटिल हो गई है कि ज्यादातर ग्रामीण निवासियों के पास जमीन आधारित आजीविकाओं का कोई फौरी विकल्प नहीं है। समूचे ग्रामीण भारत में आर्थिक अवसर सीमित हैं और जहां नई परियोजनाओं से आय के वैकल्पिक स्रोत पैदा हो रहे हैं वहां भी आमतौर पर स्थानीय जनता के पास आवश्यक कौशल नहीं होता।

जमीन पर पड़ रहे इस जटिल दबाव से भूमि बाजार अस्त-व्यस्त हो चुका है। फलस्वरूप जमीन की सैद्धिक बिक्री कम हो रही है और अगर क्रय-विक्रय को सरकार के पास पंजीकृत कराया भी जाता है तो भी कर से बचने के लिए लोग उसके वास्तविक मूल्य को दर्ज नहीं करते।

स्वामित्व की व्यवस्था भी अलग-अलग इलाकों में एक जैसी नहीं है। जहां एक तरफ कुछ क्षेत्रों में भूमि अधिकार काफी हद तक दस्तावेजी रूप ले चुके हैं वहीं दूसरी तरफ बहुत सारे अनुसूचित क्षेत्रों में सरकार परंपरागत भूमि उपयोग अधिकारों को मान्यता नहीं देती। इसी के चलते अनुसूचित क्षेत्रों में रहने वालों को अभी भी वन अधिकार अधिनियम के तहत जमीनों का मालिकाना हक नहीं मिल पाया है।

प्रस्तावित विधेयक का इतिहास

यह विधेयक औपनिवेशिक शासन के दौरान 1894 में लागू किए गए भूमि अधिग्रहण अधिनियम का स्थान लेने के लिए प्रस्तावित है। औपनिवेशिक कानून में विभिन्न सरकारों द्वारा संशोधन तो किए गए हैं लेकिन उन्होंने इस कानून के विवादास्पद आयामों पर ध्यान नहीं दिया जबकि नागर समाज दशकों से उचित पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन प्रावधानों के लिए आवाज उठा रहा था। इसके विपरीत, सरकारें जबरिया विस्थापन से पैदा होने वाले कठिन सामाजिक सवालों को संबोधित किए बिना ही भूमि अधिग्रहण के रास्ते पर चलती गईं। इससे पहले अनिवार्य भूमि अधिग्रहण के मामलों में गारंटीशुदा पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन का आश्वासन देने वाला कोई केंद्रीय कानून नहीं था। हालांकि कई राज्य सरकारों ने बढ़ते प्रतिरोध के चलते पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीतियां लागू की हैं लेकिन एक अखिल भारतीय कानूनी व्यवस्था अभी भी मौजूद नहीं है।

अस्सी के दशक के आखिर में नर्मदा बचाओ आंदोलन ने एक समन्वित पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति के बारे में चर्चा की शुरुआत की थी। इसके बाद नागर समाज संगठनों और विभिन्न सरकारों ने कई प्रस्ताव पेश किए। उनमें से किसी भी प्रस्ताव को कानूनी शक्ति नहीं दी गई। अंततः, 2011 में राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) ने भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन को आपस में जोड़ने के लिए एक कानून बनाने का सुझाव दिया। इसके बाद ही ग्रामीण विकास मंत्रालय ने एक मसौदा विधेयक तैयार किया और उसे स्थायी समिति के पास भेजने से पहले आम जनता की टिप्पणियां आमंत्रित करने के लिए प्रस्तुत किया। इसके बाद स्थायी समिति ने व्यापक सार्वजनिक चर्चाओं के जरिए अपना काम किया। समिति की रिपोर्ट विधेयक की प्रमुख कमजोरियों को रेखांकित करती है। सार्वजनिक उद्देश्य की व्यापक परिभाषा; अगर ज्यादातर अनिवार्य भूमि अधिग्रहण विशेष कानूनों के तहत किए जा रहे हैं तो इस विधेयक का प्रभाव कितना सीमित होगा; तथा मुआवजे और पुनर्वास पैकेजों की केंद्रीय परिभाषा आदि सवालों पर रिपोर्ट में विशेष चिंता व्यक्त की गई।⁹

इन कमजोरियों के बावजूद यह विधेयक एक सार्थक कदम तो है ही साथ ही यह ऐसे भूमि अधिग्रहण से बचाव की व्यवस्था करता है जिससे लोगों और उनकी खाद्य सुरक्षा पर गहरे प्रभाव पड़ सकते हैं। यह विधेयक अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विशेष कानूनों की नजीर को स्वीकार करता है, जैसे वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) तथा पंचायत अनुसूचित क्षेत्र विस्तार अधिनियम (पेसा) आदि। यह विधेयक सभी प्रभावितों को एक विविधतापूर्ण पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन पैकेज प्रदान करता है और भू-स्वामियों को मिलने वाले मुआवजे की गणना के लिए उदार मानक तय करता है।¹⁰

इस विधेयक पर जो अलग-अलग रुख रखा गया है, वे इसमें उठाए गए मुद्दे की जटिलता को दर्शाता है। जो लोग सार्वजनिक उद्देश्य की व्यापक परिभाषा के समर्थक हैं वे दीर्घकालिक आर्थिक विकास के नाम पर निजी इस्तेमाल के लिए सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण को जायज ठहरा रहे हैं। उनका कहना है कि एक सुचारु बाजार के अभाव में आर्थिक विकास के इन अवसरों को खोलने के लिए सरकार की भूमिका अनिवार्य है। दूसरी तरफ, कॉर्पोरेट क्षेत्र के बहुत सारे लोग इस बात से डरे हुए हैं कि सरकारी हस्तक्षेप से उनकी मुश्किलें बढ़ जाएंगी और इसलिए वे बाजार के हिसाब से ही चलने की छूट चाहते हैं। ज्यादातर नागर समाज

संगठन इस बात पर सहमत हैं कि सार्वजनिक उद्देश्य को बहुत स्पष्ट और संकुचित रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। उनका कहना है कि संभावित आर्थिक लाभों को प्रभावित आबादी पर पड़ने वाले प्रभावों के साथ तौल कर देखा जाना जरूरी है। इनके अलावा भी विधेयक के बहुत सारे पहलुओं पर सवाल और संदेह बने हुए हैं।

ऑक्सफैम इंडिया स्थायी समिति की रिपोर्ट के समर्थन में है और विधेयक में निम्नलिखित संशोधनों का सुझाव देता है :

सिफारिशें

► अनिवार्य भूमि अधिग्रहण का प्रावधान केवल कुछ बेहद सुपरिभाषित सरकारी उद्देश्यों तक ही सीमित रहना चाहिए। निजी परियोजनाओं को सुविधा देने के मामले में सरकार की भूमिका जमीन के क्रय-विक्रय पर नियमन से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

भारत तथा दूसरे देशों में अनिवार्य भूमि अधिग्रहण और गरीबी के संबंधों पर काफी शोध हो चुके हैं।¹¹ लिहाजा, विधेयक का मार्गदर्शक सिद्धांत ये होना चाहिए कि ऐसे अधिग्रहणों की संख्या कम से कम की जाए। इसे ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक उद्देश्य की परिभाषा का दायरा स्कूल, अस्पताल, बुनियादी ढांचे और रक्षा प्रतिष्ठान आदि केवल कुछ बेहद परिभाषित सरकारी उद्देश्यों तक ही समिति होना चाहिए। पीपीपी अथवा निजी परियोजनाओं के लिए जमीन की खरीद बाजार पर ही आश्रित होनी चाहिए। ऐसी स्थितियों में सरकार को सूचनाओं के प्रसार तथा कानून के दुरुपयोग को रोकने की महत्वपूर्ण भूमिका तो निभानी चाहिए लेकिन इसके लिए उसे अपने एमिनेंट डोमेन की सत्ता का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

सार्वजनिक और निजी के बीच इस स्पष्ट भेद की बजाय विधेयक में ऐसे निजी उद्देश्यों के लिए भी भूमि अधिग्रहण पर मंजूरी दी गई है जहां “आम जनता को व्यापक लाभ मिलेंगे”।¹² इस परिभाषा के हिसाब से तो कोई भी पीपीपी और ज्यादातर निजी परियोजनाएं भी सार्वजनिक उद्देश्य के दायरे में आ जाएंगे जिससे बड़े पैमाने पर अनिवार्य अधिग्रहण का रास्ता खुल जाएगा। विधेयक के 2011 के संस्करण में इन जोखिमों पर अंकुश लगाने के लिए ये प्रावधान किया गया है कि कम से कम 80 प्रतिशत प्रभावित लोगों से सहमति जरूर ली जाए। लेकिन इस प्रावधान पर भरोसा करना मुश्किल है क्योंकि इस सहमति के नाम पर न केवल प्रभावितों की फर्जी परामर्श बैठकें बुलाई जाती हैं और फर्जी दस्तखतों का सहारा लिया जाता है बल्कि सहमति देने के लिए लोगों को बाध्य भी किया जाता है। इसके अलावा, अब सरकार इस प्रावधान को भी कमजोर करने की कोशिश कर रही है क्योंकि सरकार ने प्रस्ताव रखा है कि अब पहले से कम भूस्वामियों की सहमति भी पर्याप्त होगी।

► विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को बाध्यकारी मान्यता देकर सरकार को सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों को और मजबूत करना चाहिए।

इस विधेयक में सामाजिक प्रभाव आकलन अध्ययन और एक स्वतंत्र विशेषज्ञ समूह द्वारा उसकी समीक्षा को मुख्य सामाजिक सुरक्षा प्रावधान बताया गया है। ऐसा अध्ययन ग्राम सभा के सदस्यों के साथ चर्चा पर आधारित होगा और इस बात का आकलन करेगा कि परियोजना में सार्वजनिक उद्देश्य का स्वरूप क्या है और सामाजिक व पर्यावरणीय लागतों की तुलना में उसके संभावित लाभ कितने होंगे; प्रभावित परिवारों की संख्या कितनी होगी और आसपास के क्षेत्रों में क्या सामाजिक-आर्थिक प्रभाव पड़ेंगे; क्या अधिग्रहण के लिए निर्धारित क्षेत्रफल न्यूनतम आवश्यकता पर आधारित है और क्या किसी अन्य स्थान पर अधिग्रहण संभव है या नहीं।¹³

इसके बाद यह आकलन पांच बाहरी विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा समीक्षा के लिए भेजा जाएगा जो “ये सुझाव दे सकते हैं कि परियोजना को रद्द कर दिया जाए” बशर्ते उसके प्रभाव अस्वीकार्य प्रतीक होते हों।¹⁴ इस वाक्य में जो अस्पष्टता है वह इस सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान की विश्वसनीयता को क्षीण कर देती है। सिफारिश के बाध्यकारी स्वरूप को इस तरह व्यक्त किया जाना चाहिए जिससे भविष्य में इसकी व्याख्याओं में भ्रम की गुंजाइश न रहे।

► प्रभावित लोगों की आजीविका बहाल करने के लिए पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन के प्रावधानों में संशोधन किया जाना चाहिए।

इस बारे में काफी अध्ययन हो चुके हैं कि “लोगों को जमीन और नौकरियों में उत्पादनशील ढंग से पुनर्वास देने की” सुनियोजित योजना के बिना दिए जाने वाले आर्थिक मुआवजे से क्या समस्याएं पैदा होती हैं।¹⁵ भूमि अधिग्रहणों का एक और स्याह पक्ष यह है कि मुआवजा आमतौर पर केवल भूस्वामियों को ही दिया जाता रहा है जिसकी वजह से अनेक पट्टेदारों, खेत मजदूरों, बंटाईदारों और वन निवासियों को कोई मुआवजा नहीं मिल पाता है।

प्रस्तावित विधेयक में इस लिहाज से एक प्रगतिशील प्रावधान किया गया है कि भूस्वामियों को उदार आर्थिक मुआवजा देने के साथ-साथ सभी प्रभावित लोगों को पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन सुविधाओं का अधिकारी माना गया है। लेकिन यह प्रावधान तभी सार्थक हो सकता है जब पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन उपायों को और मजबूत किया जाए और जहां तक संभव हो भूस्वामियों को जमीन के बदले समान मूल्य की जमीन ही दी जानी चाहिए। जहां ऐसा संभव नहीं है वहां पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन प्रावधानों में प्रभावितों की आजीविका बहाल करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। मौजूदा विधेयक में रोजगार की गारंटी कोई खास उम्मीद नहीं जगाती क्योंकि इस प्रावधान के तहत परिवार के केवल एक व्यक्ति को ही नौकरी मिलेगी। मौजूदा विधेयक में पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन प्रावधान महिलाओं की आजीविका की रक्षा के लिए भी पर्याप्त प्रयास नहीं करते। पूरे परिवार को केवल एक नौकरी और कुछ धन देने से सारी आर्थिक ताकत परिवार के पुरुष मुखिया पर ही केंद्रित हो जाएगी। खासतौर से अनुसूचित जातियों के विषय में विभिन्न अध्ययन यह साबित कर चुके हैं कि वन एवं कृषि संसाधनों पर आश्रित होने के कारण किस तरह विस्थापित महिलाएं अपनी परंपरागत आर्थिक भूमिकाओं से वंचित हो जाती हैं।¹⁶

► विभिन्न प्रकार के भूमि अधिग्रहणों को ध्यान में रखते हुए बनाए गए विशेष कानूनों और प्रस्तावित विधेयक के बीच तालमेल होना चाहिए।

इस विधेयक का महत्व तब तक सीमित ही रहेगा जब तक विभिन्न प्रकार के अधिग्रहणों से संबंधित 13 विशेष कानूनों को इसके तालमेल में नहीं लाया जाएगा। आणविक ऊर्जा, मेट्रो, रेलवे, राजमार्गों और खदानों के लिए अधिग्रहण विशेष कानूनों के तहत आते हैं। गौरतलब है कि ज्यादातर सरकारी अधिग्रहण इन्हीं उद्देश्यों के लिए किए जाते रहे हैं। लिहाजा, दो साल की समय सीमा के भीतर इन 13 विशेष कानूनों में निहित सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों और पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन प्रावधानों को प्रस्तावित कानून के तालमेल में लाया जाना जरूरी है।

बहस के लिए प्रश्न

इन आयामों के अलावा यह प्रस्तावित विधेयक कई और भी कठिन सवाल खड़े करता है।

